भारतीय ज्ञान प्रणाली उद्‌गम और विकास

सम्पादक :

डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

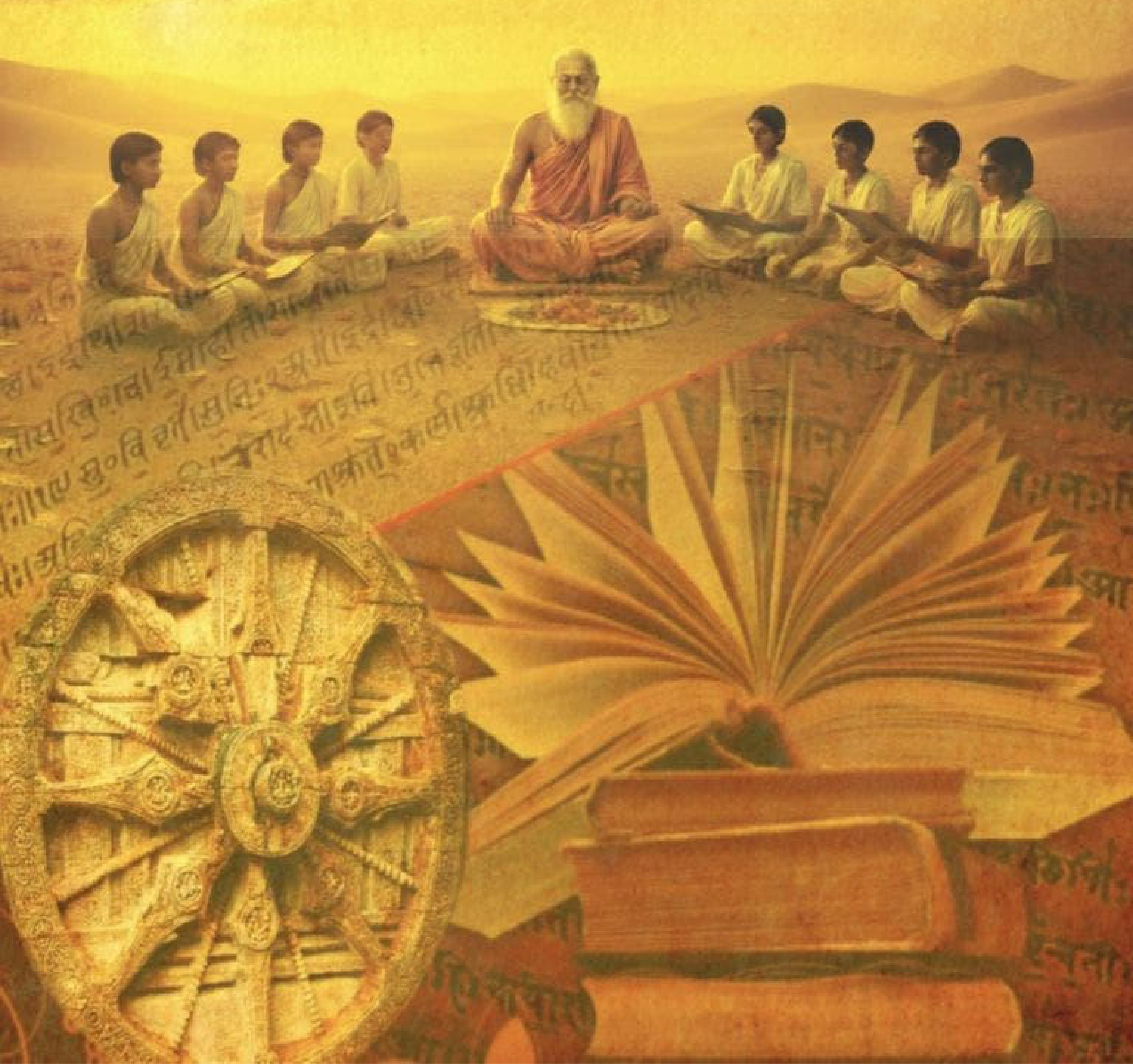

भारतीय ज्ञान प्रणाली
उद्गम और विकास

सम्पादक :

डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

Ph.D., D.Lit. (Sub.)

निदेशक, कॉम्पिटिशन प्लस ग्रुप ऑफ इन्स्टीट्यूशन,
अजमेर

Books n Books

51/1509, आचमन, वेदविहार,
लोहाखान, अजमेर-305001

प्रकाशक :
पुष्पा शर्मा
Books n Books
51/1509, आचमन, वेदविहार,
लोहाखान, अजमेर-305001
ई-मेल : bnbajmer@gmail.com
मो. 9660111549

संस्करण
प्रथम 2026

ISBN : 978-81-993854-1-2

मूल्य - 400/-

रचना - भारतीय ज्ञान प्रणाली-उद्गम और विकास

सम्पादक - डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

आवरण - श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स, अजमेर

मुद्रक
श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स, अजमेर

4

भारतीय परम्परा में प्रकृति निरूपण

डॉ. किरन बड़ेरिया
सहायक आचार्य (समाज विज्ञान विभाग)
हुकुमचन्द नोबेल इंस्टीट्यूट ऑफ साईंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

भारतीय दार्शनिक परम्परा में प्रकृति के स्वरूप को अत्यन्त गम्भीरता और सूक्ष्मता से समझाया गया है। यहाँ सृष्टि को मूलतः दो प्रकार के तत्त्वों में विभक्त किया गया है—चेतन और अचेतन। चेतन तत्त्व वे हैं जिनमें चेतना, ज्ञान, विचार, मनन-चिन्तन तथा कर्म करने की क्षमता विद्यमान होती है। इसके विपरीत अचेतन तत्त्व वे माने गए हैं जिनमें न तो चेतना होती है, न ज्ञान और न ही स्वयंस्फूर्त सोचने-समझने की शक्ति। इसी दार्शनिक वर्गीकरण के आधार पर सम्पूर्ण विश्व की संरचना को समझने का प्रयास किया गया है।

चेतन तत्त्वों में परमात्मा और जीवात्मा की गणना की गई है। दोनों में चेतना और ज्ञान का अस्तित्व स्वीकार किया गया है। जीवात्मा सीमित है, कर्म करता है और अपने कर्मों के अनुसार फल भोगता है, जबकि परमात्मा सर्वव्यापक, सर्वज्ञ और कर्म-फल के बन्धन से परे माना गया है। इसके विपरीत प्रकृति को अचेतन तत्त्व माना गया है। प्रकृति में स्वयं कोई चेतना या ज्ञान नहीं होता। यह पंचमहाभूतों—पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश—का संघात है, जिनसे सम्पूर्ण भौतिक जगत का निर्माण हुआ है।

भारतीय चिन्तन में यह स्पष्ट किया गया है कि पंचतत्त्व स्वयं विचार करने या निर्णय लेने में समर्थ नहीं हैं। पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश अपने आप में केवल साधन हैं, जिनका उपयोग किया जाता है। ये सभी भोग्य पदार्थ हैं, अर्थात् उपभोग के योग्य वस्तुएँ हैं। जहाँ भोग्य वस्तुएँ होती हैं, वहाँ उनका कोई भोग्ता या उपभोक्ता भी अवश्य होता है। इस दृष्टि से संसार में जीवात्मा को उपभोक्ता माना गया है और प्रकृति तथा उससे उत्पन्न समस्त पदार्थों को उपभोग्य। जीवात्मा प्रकृति के माध्यम से कर्म करता है और उन्हीं कर्मों के फल का अनुभव करता है।

इस गूढ़ दार्शनिक सत्य को वेदों में अत्यन्त सुन्दर प्रतीकात्मक भाषा में समझाया गया है। ऋग्वेद, अथर्ववेद तथा निरुक्त में वर्णित एक प्रसिद्ध मंत्र में संसार को एक

वृक्ष के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जिस पर दो पक्षी बैठे हुए हैं। ये दोनों पक्षी परस्पर मित्र हैं और एक ही वृक्ष पर निवास करते हैं। इनमें से एक पक्षी वृक्ष के स्वादिष्ट फलों को खाता है, जबकि दूसरा पक्षी कुछ भी नहीं खाता, केवल साक्षी रूप में स्थित रहकर प्रकाशमान रहता है।

इस दृष्टान्त में वृक्ष प्रकृति का प्रतीक है। उस वृक्ष पर बैठे दो पक्षी जीवात्मा और परमात्मा हैं। जीवात्मा रूपी पक्षी प्रकृति के फलों का उपभोग करता है, अर्थात् कर्म करता है और कर्मफल भोगता है। सुख-दुःख, लाभ-हानि, जन्म-मरण आदि सभी अनुभव उसी के हिस्से में आते हैं। दूसरा पक्षी परमात्मा का प्रतीक है, जो न तो कर्म करता है और न कर्मफल भोगता है। वह केवल साक्षी भाव से सब कुछ देखता है और अपनी ज्योति से सबको प्रकाशित करता है।

प्रकृति का अनादि स्वरूप :

भारतीय दर्शन में श्वेताश्वतर उपनिषद् और श्रीमद्भगवद्गीता दोनों में प्रकृति को अनादि अर्थात् अजन्मा सत्ता माना गया है। श्वेताश्वतर उपनिषद् में ईश्वर, जीवात्मा और प्रकृति इन तीनों के गुण-धर्मों का विवेचन करते हुए प्रकृति को 'अज' कहा गया है, जिसका अर्थ है कि उसका कोई आरम्भ नहीं है। साथ ही यह भी स्पष्ट किया गया है कि प्रकृति त्रिगुणात्मक है। सत्त्व गुण के लिए शुक्ल, रजोगुण के लिए लोहित और तमोगुण के लिए कृष्ण शब्दों का प्रयोग किया गया है, जिससे यह संकेत मिलता है कि प्रकृति में प्रकाश, क्रिया और जड़ता तीनों प्रवृत्तियाँ विद्यमान हैं।

उपनिषद् के अनुसार प्रकृति सृष्टि का कारण है। उसी से नाना प्रकार की प्रजाएँ और जीव-जातियाँ उत्पन्न होती हैं। जीवात्मा शरीर में निवास करता हुआ कर्म करता है और अपने कर्मों के अनुसार सुख-दुःख का भोग करता है, जबकि परमात्मा कर्म और कर्मफल से रहित होकर केवल साक्षी रूप में स्थित रहता है।

श्रीमद्भगवद्गीता में भी यही सिद्धान्त दूसरे शब्दों में व्यक्त किया गया है। गीता कहती है कि प्रकृति और पुरुष दोनों अनादि हैं। सत्त्व, रज और तम इन तीन गुणों से युक्त सम्पूर्ण पदार्थ तथा राग-द्वेष आदि विकार प्रकृति से उत्पन्न होते हैं। पंचमहाभूत, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि और अहंकार—ये सभी प्रकृति के कार्य माने गए हैं।

गीता के अनुसार जीवात्मा त्रिगुणात्मक पदार्थों के भोग के कारण जन्म-मरण के बन्धन में पड़ता है और विभिन्न योनियों में जन्म लेता है, जबकि परमात्मा प्रत्येक शरीर में साक्षी और मार्गदर्शक रूप में विद्यमान रहता है। इस प्रकार उपनिषद् और गीता दोनों में प्रकृति को अनादि, त्रिगुणात्मक और सृष्टि की मूल कारण सत्ता के रूप में स्वीकार किया गया है।

प्रकृति का स्वरूप और सृष्टि :

महर्षि कपिल के सांख्यदर्शन में प्रकृति के स्वरूप और सृष्टि-प्रक्रिया का अत्यन्त व्यवस्थित विवेचन मिलता है। सांख्य के अनुसार सत्त्व, रज और तम इन तीन गुणों की साम्यावस्था को ही प्रकृति या मूल प्रकृति कहा जाता है। जब ये तीनों गुण समान मात्रा में संतुलित रहते हैं, तब सृष्टि की कोई क्रिया प्रकट नहीं होती और यही अव्यक्त अवस्था प्रकृति कहलाती है। प्रकृति जड़ है, उसमें स्वयं चेतना नहीं होती। उसमें चेतनता तब प्रतीत होती है, जब उस पर चेतन पुरुष की छाया या प्रतिबिम्ब पड़ता है।

पुरुष के संयोग से प्रकृति में विक्षोभ उत्पन्न होता है और सृष्टि-क्रम आरम्भ होता है। सबसे पहले प्रकृति से महत्त्व या बुद्धि की उत्पत्ति होती है। महत्त्व से अहंकार उत्पन्न होता है। अहंकार के सत्त्वप्रधान होने पर मन, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियाँ इस प्रकार ग्यारह तत्त्व उत्पन्न होते हैं। अहंकार के तमोगुण प्रधान होने पर पाँच तन्मात्राएँ उत्पन्न होती हैं, जो महाभूतों के सूक्ष्म रूप हैं—शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध। इन्हीं तन्मात्राओं से क्रमशः पाँच महाभूत—आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथिवी की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार सम्पूर्ण स्थूल और सूक्ष्म जगत प्रकृति के ही विकास के रूप हैं।

सांख्य दर्शन के अनुसार प्रकृति के अतिरिक्त दूसरी सत्ता पुरुष है, जिसके दो रूप माने गए हैं—परम पुरुष (परमात्मा) और पुरुष (जीवात्मा)। दोनों ही अनादि और चेतन तत्त्व हैं। पुरुष स्वयं कर्ता नहीं है, परन्तु प्रकृति के गुणों का भोक्ता बनता है। जीवात्मा प्रकृति में स्थित होकर सत्त्व, रज और तम गुणों से उत्पन्न सुख-दुःख का भोग करता है, जबकि परमात्मा साक्षी रूप में स्थित रहता है।

सांख्यदर्शन में कुल 25 तत्त्व माने गए हैं और इन्हें चार वर्गों में विभाजित किया गया है। प्रथम है मूल प्रकृति, जो केवल कारण है और किसी का कार्य नहीं। द्वितीय है प्रकृति-विकृति, जो कारण भी है और कार्य भी जिसमें महत्त्व, अहंकार और पाँच तन्मात्राएँ सम्मिलित हैं। तृतीय है विकृति, जो केवल कार्य है, कारण नहीं, जिसमें मन, ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ और पाँच महाभूत आते हैं। चतुर्थ वर्ग वह है जो न प्रकृति है और न विकृति—यह पुरुष तत्त्व है।

प्रकृति की सत्ता :

सांख्यदर्शन में यह प्रश्न महत्त्वपूर्ण रूप से उठाया गया है कि प्रकृति को स्वतंत्र तत्त्व के रूप में मानने की क्या आवश्यकता है। सांख्य के अनुसार सृष्टि की जो अव्यक्त अथवा अप्रकट अवस्था है, वही प्रकृति या मूल प्रकृति कहलाती है। इस

अव्यक्त प्रकृति की सत्ता को सिद्ध करने के लिए आचार्यों ने अनेक तर्क प्रस्तुत किए हैं, जिनसे यह स्पष्ट होता है कि प्रकृति केवल कल्पना नहीं, बल्कि एक वास्तविक और अनिवार्य तत्त्व है।

सर्वप्रथम यह कहा गया है कि संसार के सभी पदार्थ परिमित, सीमित और परतंत्र हैं। जो स्वयं सीमित और आश्रित हों, वे अपने आप में अंतिम कारण नहीं हो सकते। अत: इनका कोई ऐसा मूल कारण होना चाहिए जो अपरिमित, स्वतंत्र और स्वाधीन हो। यही मूल कारण अव्यक्त प्रकृति मानी जाती है।

दूसरा तर्क यह है कि संसार के सभी पदार्थों में सत्त्व, रज और तम इन तीन गुणों की उपस्थिति पाई जाती है। प्रत्येक पदार्थ किसी न किसी रूप में सुख, दु:ख या मोह उत्पन्न करता है। जब कार्य में त्रिगुणात्मकता स्पष्ट रूप से दिखाई देती है, तो उसके मूल कारण में भी इन तीनों गुणों का होना आवश्यक है। इससे सिद्ध होता है कि त्रिगुणों की साम्यावस्था ही प्रकृति का स्वरूप है।

तीसरा तर्क– कारण कार्य के गुण साम्य से सम्बन्धित है। कारण में जो शक्ति या गुण होता है, वही कार्य में प्रकट होता है। जिसमें जिस प्रकार की शक्ति नहीं होती, उससे वैसा कार्य उत्पन्न नहीं हो सकता। जैसे तिल से ही तेल निकलता है, रेत से नहीं। इसी प्रकार महत्त्व, अहंकार आदि कार्यों में जो त्रिगुण और अविवेक आदि गुण पाए जाते हैं, वे उनके कारण रूप प्रकृति में पहले से ही विद्यमान होने चाहिए।

चौथा तर्क कारण और कार्य की पृथक् सत्ता पर आधारित है। अव्यक्त या अप्रकट रूप उपादान कारण होता है और व्यक्त या प्रकट रूप कार्य। जैसे मिट्टी घड़े का उपादान कारण है और घड़े का बनना मिट्टी का व्यक्त रूप है। इसी प्रकार यह व्यक्त जगत् किसी अव्यक्त कारण से ही उत्पन्न हुआ है। वही अव्यक्त कारण मूल प्रकृति कहलाता है।

पाँचवाँ तर्क उत्पत्ति और विनाश के क्रम से सम्बन्धित है। देखा जाता है कि सृष्टि के समय कार्य अपने कारण से उत्पन्न होता है और प्रलय या विनाश के समय वही कार्य अपने कारण में लीन हो जाता है। जैसे पंचमहाभूतों से शरीर रूपी कार्य उत्पन्न होता है और शरीर के नष्ट होने पर वह पुन: अपने मूल पंचतत्त्वों में विलीन हो जाता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि सम्पूर्ण सृष्टि भी प्रलय काल में अपने मूल कारण अव्यक्त प्रकृति में लीन हो जाती है।

प्रकृति के गुण-धर्म :

सांख्यदर्शन में प्रकृति को अव्यक्त सत्ता माना गया है, इसलिए उसके गुण-धर्म भी उसी के अनुरूप बताए गए हैं। प्रकृति का कोई कारण नहीं है, अत: वह

अनादि है। वह नित्य है, अर्थात् न उत्पन्न होती है और न नष्ट होती है। उसे सर्वव्यापक कहा गया है, क्योंकि उसी से सम्पूर्ण जगत् का विकास होता है। प्रकृति स्वयं क्रिया या चेष्टा से रहित है और एकरूप है। उसे किसी अन्य सत्ता के आश्रय की आवश्यकता नहीं होती, वह निरवयव है, अर्थात् उसके कोई भाग नहीं हैं। वह स्वतंत्र है और अव्यक्त अर्थात् अप्रकट रूप में विद्यमान रहती है। अव्यक्त होने के कारण उसे 'अव्यक्त', सृष्टि का प्रधान कारण होने से 'प्रधान' और संसार की उत्पत्ति करने के कारण 'प्रकृति' कहा गया है।

प्रकृति के मूल स्वरूप में सत्त्व, रजस् और तमस् ये तीन गुण निहित हैं। सम्पूर्ण संसार त्रिगुणात्मक है और इन तीनों गुणों के कार्यों का विस्तार से वर्णन किया गया है। सत्त्वगुण की मुख्य विशेषता लघुता या हल्कापन है। यह प्रकाशक है और तेजस्विता, स्पष्टता तथा ज्ञान को उत्पन्न करता है। सत्त्वगुण से प्रीति, प्रसन्नता, आह्लाद और शान्ति की अनुभूति होती है। यह प्रकाश देने की शक्ति है और चेतना को प्रकट करने में सहायक होता है।

रजोगुण की प्रधान विशेषता प्रेरकता है। यह क्रिया, चेष्टा और गति का कारण है। उत्साह, साहस, स्फूर्ति और कर्म में प्रवृत्ति रजोगुण से ही उत्पन्न होती है। यह मनुष्य को कार्य करने की ओर प्रेरित करता है, परन्तु इसकी अधिकता से चंचलता, अस्थिरता और विक्षोभ उत्पन्न होता है, जिससे दु:ख का अनुभव होता है।

तमोगुण में गुरुत्व या भारीपन होता है। यह सत्त्व के हल्केपन के विपरीत है। तमोगुण आलस्य, प्रमाद, अकर्मण्यता और निद्रा को जन्म देता है। यह रजोगुण की चंचलता को रोकता है और बुद्धि पर अज्ञान का आवरण डाल देता है, जिससे मोह, माया, विषाद और खेद जैसी अधम वृत्तियाँ उत्पन्न होती हैं। तमोगुण स्थिरता का भी कारण है, इसी से पृथ्वी में स्थायित्व पाया जाता है।

यह प्रश्न उठता है कि परस्पर विरोधी गुण एक साथ कैसे रहते हैं। इसका समाधान सांख्यदर्शन उदाहरणों द्वारा करता है। जैसे दीपक में तेल, बत्ती और अग्नि— तीनों परस्पर विरोधी होते हुए भी प्रकाश के उद्देश्य से एक साथ रहते हैं। इसी प्रकार शरीर में वात, पित्त और कफ परस्पर विरोधी होते हुए भी शरीर-धारण के लिए आवश्यक हैं। उसी प्रकार सत्त्व, रजस् और तमस् तीनों गुण धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूपी पुरुषार्थों की सिद्धि के लिए एक साथ कार्य करते हैं।

प्रत्येक व्यक्ति में ये तीनों गुण विद्यमान रहते हैं, परन्तु उनकी मात्रा में भिन्नता होती है। जिस व्यक्ति में सत्त्वगुण की प्रधानता होती है, वह सात्त्विक कहलाता है; रजोगुण की प्रधानता होने पर राजस और तमोगुण की अधिकता होने पर तामसी वृत्ति

विकसित होती है। किसी भी व्यक्ति में किसी गुण का पूर्ण अभाव नहीं होता, केवल अनुपात का अन्तर होता है।

सांख्यदर्शन द्वैतवाद का समर्थक है। यह प्रकृति और पुरुष—इन दो स्वतंत्र तत्त्वों को स्वीकार करता है। प्रकृति जड़ है और पुरुष चेतन है। पुरुष की चेतना का प्रतिबिम्ब जब जड़ प्रकृति में पड़ता है, तो उसे 'चिच्छायापत्ति' कहा जाता है। इसी चेतन छाया के प्रभाव से प्रकृति में चेष्टा आरम्भ होती है और सृष्टि का सम्पूर्ण विकास होता है।

प्रकृति और पुरुष का सम्बन्ध तथा पुरुष की सत्ता :

सांख्यदर्शन में प्रकृति और पुरुष के सम्बन्ध को स्पष्ट करने के लिए 'पंग्वन्धन्याय' का प्रयोग किया गया है। इस न्याय के अनुसार एक व्यक्ति पंगु है, वह चलने में असमर्थ है, जबकि दूसरा व्यक्ति अंधा है, जो देख नहीं सकता। दोनों को अपने-अपने लक्ष्य तक पहुँचना है, इसलिए वे परस्पर सहयोग करते हैं। अंधा व्यक्ति चल सकता है, अतः वह पंगु को अपने कंधों पर बैठा लेता है और पंगु व्यक्ति मार्गदर्शन करता है। इस प्रकार दोनों एक-दूसरे की सहायता से अपने गन्तव्य तक पहुँच जाते हैं।

इसी प्रकार सांख्यदर्शन में पुरुष को पंगु के समान माना गया है। उसमें चेतना तो है, पर कर्तृत्व और गति का अभाव है, इसलिए वह स्वयं कार्य नहीं कर सकता। प्रकृति अंधे के समान है। उसमें गति और क्रियाशीलता तो है, पर चेतना और विवेक नहीं है, इसलिए वह मार्ग नहीं जानती। दोनों के उद्देश्य भिन्न हैं। पुरुष को कैवल्य या मुक्ति की प्राप्ति करनी है और प्रकृति को एक ऐसे साक्षी और मार्गदर्शक की आवश्यकता है, जिसके सान्निध्य से वह अपना कार्य कर सके। जब प्रकृति और पुरुष का संयोग होता है, तब सृष्टि की प्रक्रिया आरम्भ होती है। महत्तत्त्व से लेकर पंचमहाभूतों तक का विकास होता है और यह भोग्य संसार प्रकट होता है। इस सम्बन्ध में प्रकृति भोग्य है और पुरुष भोक्ता है। भोग के माध्यम से ही अंततः पुरुष को अपवर्ग या मोक्ष की प्राप्ति होती है।

सांख्यदर्शन में यह प्रश्न भी उठाया गया है कि पुरुष को मानने की क्या आवश्यकता है। इसके लिए अनेक तर्क प्रस्तुत किए गए हैं। कहा गया है कि महत्त्व से लेकर पंचमहाभूतों तक सभी तत्त्व भोग्य हैं। जैसे वस्त्र, भवन, शयन और आसन स्वयं अपने लिए नहीं होते, बल्कि किसी के उपयोग के लिए होते हैं। जब भोग्य वस्तुएँ हैं, तो उनका कोई भोक्ता भी होना चाहिए। यह भोक्ता पुरुष है।

दूसरा तर्क यह है कि प्रकृति त्रिगुणात्मक है, अर्थात् उसमें सत्त्व, रज और तम तीनों गुण विद्यमान हैं। इसके विपरीत एक ऐसी सत्ता भी माननी आवश्यक है, जो

इन गुणों से परे हो, अर्थात् त्रिगुणातीत हो। यह त्रिगुणातीत सत्ता ही पुरुष है, जिसमें सत्त्व, रज और तम का अभाव है।

इसके अतिरिक्त यह भी कहा गया है कि जड़ वस्तुएँ तभी क्रियाशील होती हैं, जब उनका कोई अधिष्ठाता या नियामक हो। जैसे रथ स्वयं नहीं चल सकता, उसे चलाने के लिए सारथि की आवश्यकता होती है। उसी प्रकार प्रकृति जड़ है, उसमें स्वयं चेतना नहीं है, अतः उसे गति देने के लिए एक चेतन अधिष्ठाता चाहिए। यही चेतन अधिष्ठाता पुरुष है।

सांख्यदर्शन यह भी मानता है कि प्रकृति केवल भोग का साधन ही नहीं, बल्कि मोक्ष का भी साधन है। योगदर्शन में स्पष्ट कहा गया है कि दृश्य जगत भोग और अपवर्ग—दोनों का साधन है। जब प्रकृति भोग्य है, तो उसका कोई भोक्ता होना आवश्यक है, और यह भोक्ता पुरुष ही है।

अंत में यह तर्क दिया गया है कि संसार में ऐसे ज्ञानी मनुष्य भी होते हैं, जो संसार को दुःखमय मानकर उससे विरक्ति ग्रहण करते हैं। वे भौतिक सुखों को त्यागकर योग, साधना और ज्ञान के मार्ग पर चलते हैं तथा शान्ति और आनन्द का अनुभव करते हैं। यह प्रवृत्ति इस बात का संकेत है कि त्रिगुणमयी प्रकृति से भिन्न कोई ऐसी सत्ता है, जहाँ शुद्ध आनन्द और शान्ति है। यही आनन्दमयी और चेतन सत्ता पुरुष है।

अन्तःकरण के गुण-धर्म :

सांख्यदर्शन में अन्तःकरण मनुष्य की आन्तरिक मानसिक व्यवस्था है। इसके तीन अंग माने गए हैं—बुद्धि, अहंकार और मन। इन तीनों के सहयोग से मनुष्य सोचता है, निर्णय करता है और कर्म करता है।

बुद्धि का मुख्य कार्य निर्णय लेना है। क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए, कौन-सी बात लाभकारी है और कौन-सी हानिकारक—इन सबका निश्चय बुद्धि करती है। इन्द्रियों से जो ज्ञान प्राप्त होता है, उसे मन बुद्धि तक पहुँचाता है और बुद्धि उस पर विचार करके अपना निर्णय देती है। यही निर्णय मन के माध्यम से इन्द्रियों तक पहुँचता है और उसी के अनुसार कर्म होता है। सांख्यदर्शन में सात्त्विक बुद्धि को श्रेष्ठ माना गया है। सात्त्विक बुद्धि में धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य पाए जाते हैं। इसके विपरीत तामस बुद्धि में अधर्म, अज्ञान, विषय-आसक्ति और विवेक का अभाव होता है। गीता में बुद्धि को सात्त्विक, राजस और तामस तीन प्रकार की बताया गया है। सात्त्विक बुद्धि सही-गलत का ठीक ज्ञान कराती है, राजस बुद्धि भ्रमित रहती है और तामस बुद्धि उलटे को ही सही मान लेती है।

अहंकार 'मैं' और 'मेरा' की भावना को जन्म देता है। यही भावना मनुष्य को

विषयों से बाँधती है और संसार के बन्धनों का कारण बनती है। जब तक अहंकार बना रहता है, तब तक जीव अपने को परमात्मा से अलग मानता है। योग–साधना में अहंकार के नाश को अत्यन्त आवश्यक बताया गया है, क्योंकि अहंकार के नष्ट होने पर ही आत्मा को परमात्मा से एकत्व का अनुभव होता है। सांख्य के अनुसार सत्त्वप्रधान अहंकार से इन्द्रियाँ और मन उत्पन्न होते हैं, जबकि तमोगुणप्रधान अहंकार से तन्मात्राएँ और महाभूत उत्पन्न होते हैं।

मन का कार्य संकल्प और विकल्प करना है। यह ज्ञानेन्द्रियों से प्राप्त ज्ञान पर विचार करता है और उसे बुद्धि तक पहुँचाता है। बुद्धि के निर्णय को यह कर्मेन्द्रियों तक भेजता है। इस प्रकार मन मध्यस्थ की भूमिका निभाता है। इसे कार्यालय के मुख्य लिपिक के समान माना गया है, जो स्वयं निर्णय नहीं लेता, बल्कि निर्णय के लिए सामग्री प्रस्तुत करता है और आदेशों को आगे पहुँचाता है। मन स्वभाव से बहुत चंचल होता है, पर अभ्यास और वैराग्य द्वारा इसे एकाग्र किया जा सकता है। जब मन नियंत्रित हो जाता है, तब वही महान शक्ति और आत्मिक उन्नति का साधन बन जाता है।

सूक्ष्म शरीर (लिंग शरीर) :

सांख्यदर्शन में यह माना गया है कि प्रकृति का सम्बन्ध शरीर से है और शरीर का सम्बन्ध जन्म तथा मृत्यु से। जब यह प्रश्न उठता है कि मृत्यु के बाद जीव अगले जन्म में किस रूप में जाता है, तब सूक्ष्म शरीर या लिंग शरीर की अवधारणा को समझना आवश्यक हो जाता है। वास्तव में स्थूल शरीर तो मृत्यु के साथ नष्ट हो जाता है, परन्तु जो अगले जन्म तक जाता है, वह सूक्ष्म या लिंग शरीर ही होता है।

सूक्ष्म शरीर को समझाने के लिए उदाहरण दिया गया है कि जैसे किसी चित्र को बनाने के लिए एक आधार चाहिए, वैसे ही मन, बुद्धि आदि सूक्ष्म तत्त्वों के लिए भी एक आधार की आवश्यकता होती है। यही आधार लिंग शरीर है। जिस प्रकार छाया के लिए वृक्ष का होना आवश्यक है, उसी प्रकार मन, बुद्धि और अहंकार जैसे सूक्ष्म तत्त्व लिंग शरीर के आश्रय से ही कार्य करते हैं। यह लिंग शरीर ही पूर्वजन्म के संस्कारों को अपने साथ लेकर चलता है और उन्हीं के अनुसार नया जन्म ग्रहण करता है।

मनुष्य अपने जीवन में जो भी कर्म करता है, वे वासना या संस्कार के रूप में सुरक्षित रहते हैं। मृत्यु के समय ये संस्कार नष्ट नहीं होते, बल्कि सूक्ष्म शरीर के साथ अगले जन्म में चले जाते हैं। इसे समझाने के लिए यह उदाहरण दिया जाता है कि जब कोई फूल हाथ में लिया जाता है, तो उसकी गन्ध हाथ में लग जाती है। फूल को

छोड़ देने पर भी कुछ समय तक वह गन्ध हाथ में बनी रहती है। इसी प्रकार शरीर के नष्ट हो जाने पर भी कर्मों की वासना सूक्ष्म शरीर में बनी रहती है। इन्हीं वासनाओं के कारण जीव को विभिन्न योनियों में जन्म लेना पड़ता है।

सूक्ष्म या लिंग शरीर में कुल अठारह तत्त्व माने गए हैं। इनमें बुद्धि (महत् तत्त्व), अहंकार, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, मन और पाँच तन्मात्राएँ सम्मिलित हैं। यही अठारह तत्त्व सूक्ष्म शरीर के साथ जुड़े रहते हैं। इन्हीं के आधार पर यह निश्चित होता है कि जीव को अगले जन्म में उच्च योनि प्राप्त होगी या निम्न।

गीता में प्रकृति का स्वरूप :

श्रीमद्भगवद्गीता में प्रकृति के स्वरूप का विस्तृत और गूढ़ वर्णन मिलता है। गीता यह स्पष्ट करती है कि संसार में जो कुछ भी घटित हो रहा है, वह सब प्रकृति के द्वारा ही सम्पन्न होता है। प्रकृति में सत्त्व, रजस् और तमस् ये तीन गुण मूल रूप से विद्यमान हैं। ये गुण केवल मनुष्य ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण जीव-जगत् को निरन्तर कर्म करने के लिए प्रेरित करते रहते हैं। इसी कारण गीता में कहा गया है कि कोई भी मनुष्य क्षण भर के लिए भी बिना कर्म किए नहीं रह सकता। चाहे मनुष्य चाहे या न चाहे, प्रकृति के गुण उसे कुछ न कुछ कर्म करने के लिए बाध्य कर देते हैं।

गीता यह भी बताती है कि प्रकृति अत्यन्त प्रबल है। मनुष्य अपने पूर्वजन्म में जो कर्म करता है, वे मृत्यु के बाद संस्कार या वासना के रूप में सूक्ष्म शरीर में सुरक्षित रहते हैं। अगले जन्म में वही संस्कार प्रारब्ध, स्वभाव या प्रवृत्ति के रूप में प्रकट होते हैं। इसी कारण मनुष्य स्वतंत्र होने का अनुभव करते हुए भी अपने स्वभाव के अनुसार सात्त्विक, राजस या तामस कर्म करता है। यही स्वभाव उसे अच्छे या बुरे कर्मों की ओर प्रवृत्त करता है। प्रत्येक जीव में अहंकार भी विद्यमान रहता है, जो हर कर्म में 'मैं' और 'मेरा' का भाव जोड़ देता है। इसी अहंकार के कारण मनुष्य कर्मों के बन्धन में फँस जाता है।

गीता में स्पष्ट कहा गया है कि वास्तव में सभी कर्म प्रकृति के गुणों द्वारा ही किए जाते हैं, परन्तु अज्ञानी व्यक्ति अहंकार से ग्रस्त होकर यह समझता है कि 'मैं कर्ता हूँ'। सामान्य मनुष्य प्रकृति के गुणों से मोहित होकर कर्मों और उनके फलों में आसक्त हो जाता है, जिससे बन्धन उत्पन्न होता है। इसके विपरीत विद्वान् व्यक्ति यह जान लेता है कि आत्मा इन गुणों और कर्मों से निर्लेप है। वह समझता है कि कर्म गुणों के द्वारा होते हैं, आत्मा उनका कर्ता नहीं है। इसी ज्ञान के कारण वह कर्म करते हुए भी बन्धन में नहीं पड़ता।

गीता में प्रकृति और स्वभाव के सम्बन्ध को भी स्पष्ट किया गया है। प्रकृति

जन्म-जन्मान्तरों तक जीव के साथ रहती है। पूर्वजन्म के कर्म ही स्वभाव बनकर अगले जन्म में प्रकट होते हैं। इसलिए श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि यदि वह यह सोचे कि मैं युद्ध नहीं करूँगा, तो यह उसका भ्रम है, क्योंकि उसका स्वभाव और प्रकृति उसे युद्ध करने के लिए विवश कर देंगे। मनुष्य प्रकृति की आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकता।

गीता के तेरहवें अध्याय में प्रकृति और पुरुष को 'क्षेत्र' और 'क्षेत्रज्ञ' के रूप में समझाया गया है। क्षेत्र का अर्थ है प्रकृति और उसका विस्तार, जिसमें मूल प्रकृति, बुद्धि, अहंकार, इन्द्रियाँ, मन, तन्मात्राएँ और पंचमहाभूत सम्मिलित हैं। इसके साथ ही इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, शरीर, चेतना और धैर्य आदि को भी क्षेत्र में रखा गया है। क्षेत्रज्ञ पुरुष है, जिसमें जीवात्मा और परमात्मा दोनों आते हैं। परमात्मा को सर्वव्यापक, सूक्ष्म, प्रकाशस्वरूप और सभी प्राणियों के हृदय में स्थित बताया गया है।

गीता के अनुसार प्रकृति और पुरुष दोनों अनादि हैं। प्रकृति से सभी तत्त्वों की उत्पत्ति होती है, जबकि पुरुष सुख-दुःख के भोग का अनुभव करता है। जीवात्मा अपने वास्तविक स्वरूप में निर्लेप होते हुए भी प्रकृति के गुणों का भोग करता है और इन्हीं गुणों के कारण विभिन्न योनियों में जन्म लेता है। जो व्यक्ति यह जान लेता है कि सभी कर्म प्रकृति के द्वारा हो रहे हैं और आत्मा केवल साक्षी है, वही सच्चा तत्त्वज्ञानी और ब्रह्मज्ञ कहलाता है। परमात्मा को अकर्ता और साक्षी रूप में जानना ही गीता के अनुसार तत्त्वज्ञान है।

इस सम्पूर्ण विवेचन का सार यह है कि श्रीमद्भगवद्गीता में प्रकृति को सृष्टि की सक्रिय और कर्ता शक्ति के रूप में स्वीकार किया गया है। सत्त्व, रजस् और तमस् इन तीन गुणों के द्वारा ही समस्त कर्म, प्रवृत्तियाँ और परिवर्तन सम्पन्न होते हैं। जीवात्मा अपने वास्तविक स्वरूप में अकर्ता और निर्लेप है, परन्तु अहंकार और अविद्या के कारण वह स्वयं को कर्ता मानकर कर्म-बन्धन में पड़ जाता है। पूर्वजन्मों के कर्म संस्कार और स्वभाव बनकर वर्तमान जीवन को नियंत्रित करते हैं, जिससे मनुष्य अपने स्वभावानुसार कर्म करने को विवश होता है। प्रकृति और पुरुष दोनों अनादि हैं—प्रकृति सृष्टि का कारण है और पुरुष भोग्ता तथा साक्षी है। जो व्यक्ति यह समझ लेता है कि सभी कर्म प्रकृति के गुणों के द्वारा होते हैं और आत्मा केवल साक्षी है, वही आसक्ति से मुक्त होकर कर्म करता है और अन्ततः तत्त्वज्ञान एवं मोक्ष को प्राप्त करता है।

इस सम्पूर्ण विवेचन का सार यह है कि श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में प्रकृति को सृष्टि की सक्रिय और कर्ता शक्ति के रूप में स्वीकार किया गया है। सत्त्व, रजस् और

तमस् इन तीन गुणों के द्वारा ही समस्त कर्म, प्रवृत्तियाँ और परिवर्तन सम्पन्न होते हैं। जीवात्मा अपने वास्तविक स्वरूप में अकर्ता और निर्लेप है, परन्तु अहंकार और अविद्या के कारण वह स्वयं को कर्ता मानकर कर्म–बन्धन में पड़ जाता है। पूर्वजन्मों के कर्म संस्कार और स्वभाव बनकर वर्तमान जीवन को नियंत्रित करते हैं, जिससे मनुष्य अपने स्वभावानुसार कर्म करने को विवश होता है। प्रकृति और पुरुष दोनों अनादि हैं, प्रकृति सृष्टि का कारण है और पुरुष भोग्ता तथा साक्षी है। जो व्यक्ति यह समझ लेता है कि सभी कर्म प्रकृति के गुणों के द्वारा होते हैं और आत्मा केवल साक्षी है, वही आसक्ति से मुक्त होकर कर्म करता है और अन्ततः तत्त्वज्ञान एवं मोक्ष को प्राप्त करता है।

☆☆☆